एक्ज़िम बैंक
EXIM BANK
भारतीय निर्यात-आयात बैंक
EXPORT-IMPORT BANK OF INDIA

केन्द्र एक भवन, 21वीं मंजिल,
विश्व व्यापार केन्द्र संकुल,
कफ परेड, मुंबई-400005.
फोन: (91 22) 22172600
फैक्स: (91 22) 22182572

www.eximbankindia.in/cdal
#EXIMCDAL33

भारतीय निर्यात-आयात बैंक 33 वां
स्थापना दिवस वार्षिक व्याख्यान

व्यापार में डॉलर का प्रभुत्व: तथ्य और प्रभाव

वक्ता
प्रो. गीता गोपीनाथ
जॉन ज्वान्स्ट्रा प्रोफेसर, इंटरनेशनल स्टडीज
एंड इकनॉमिक्स, हार्वर्ड विश्वविद्यालय

एक्ज़िम बैंक
EXIM BANK
भारतीय निर्यात-आयात बैंक
EXPORT-IMPORT BANK OF INDIA

भारतीय निर्यात-आयात बैंक 33वां स्थापना दिवस वार्षिक व्याख्यान

भारतीय निर्यात–आयात बैंक

33वां स्थापना दिवस वार्षिक व्याख्यान

गुरुवार, 21 दिसंबर, 2017 को शाम 6.00 बजे

स्थान: क्रिस्टल रूम,
दि ताज महल पैलेस होटल, मुंबई

एक्ज़िम बैंक
EXIM BANK
भारतीय निर्यात-आयात बैंक
EXPORT-IMPORT BANK OF INDIA

भारतीय–निर्यात आयात बैंक की अनुमति के बिना इस व्याख्यान के किसी भी हिस्से का पुनः प्रयोग नहीं किया जा सकता। इसमें प्रकट विचार वक्ता की निजी राय है। भारतीय–निर्यात आयात बैंक का इनसे सहमत होना जरूरी नहीं है।

एक्ज़िम बैंक
EXIM BANK
भारतीय निर्यात-आयात बैंक
EXPORT-IMPORT BANK OF INDIA

व्यापार में डॉलर का प्रभुत्व: तथ्य और प्रभाव

प्रो. गीता गोपीनाथ
जॉन ज़्वान्स्ट्रा प्रोफेसर, इंटरनेशनल स्टडीज
एंड इकनॉमिक्स, हार्वर्ड विश्वविद्यालय

भारतीय निर्यात–आयात बैंक का 33वां स्थापना दिवस वार्षिक व्याख्यान प्रस्तुत करना मेरे लिए गर्व की बात है। मैं प्रबंध निदेशक श्री डेविड रस्कीना का विशेष रूप से धन्यवाद देना चाहूँगी, जिन्होंने मुझे इस विशेष अवसर पर बोलने के लिए आमंत्रित किया।

यह देखते हुए कि यह एक्ज़िम बैंक का व्याख्यान है, मुझे लगता है कि अंतरराष्ट्रीय व्यापार के बारे में चर्चा करना उपयुक्त रहेगा। पिछले चार दशकों में अंतरराष्ट्रीय व्यापार और वित्त में हुई उल्लेखनीय वृद्धि ने अर्थशास्त्र और राजनीति को बदल दिया है। पिछले दशक के दौरान हुए वैश्विक वित्तीय संकट ने अर्थशास्त्र की कई मौजूदा मान्यताओं को चुनौती दी है। आज के अपने व्याख्यान में मैं अंतरराष्ट्रीय अर्थशास्त्र की ऐसी ही एक मान्यता और उसकी रूपरेखा को कठघरे में खड़े करने वाले हालिया साक्ष्यों के बारे में चर्चा करूंगी। अंतरराष्ट्रीय अर्थशास्त्र में इसे "मंडेल–फ्लेमिंग पैराडाइम" के नाम से जाना जाता है। ये साक्ष्य पिछले दशक में सह–लेखकों के साथ किए मेरे शोध कार्य से उत्पन्न होते हैं, जिसने हमें एक नई मान्यता की ओर बढ़ने के लिए प्रेरित किया है। इसे हम "डॉमिनैन्ट करंसी पैराडाइम" कहते हैं, यानी मुद्रा के प्रभुत्व का दौर।

इस पैराडाइम को सही परिप्रेक्ष्य में समझना महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इससे अंतरराष्ट्रीय अर्थशास्त्र के बुनियादी सवालों को समझने में मदद मिलती है। जैसे– मुद्रा विनिमय दर में उतार–चढ़ाव महंगाई और व्यापार को कैसे प्रभावित करता है? अमेरिका की मौद्रिक नीति शेष विश्व को कैसे प्रभावित करती है?

उभरते बाजारों और केंद्रीय बैंकरों को कौनसी विनिमय दर नीति अपनानी चाहिए? वित्तीय बाजारों में डॉलर इतना महत्त्वपूर्ण क्यों है? मैं मंडेल–फ्लेमिंग पैराडाइम (एमएफपी) से अपनी बात शुरू करूंगी। इसके बाद, मैं अनुभव आधारित ऐसे साक्ष्य प्रस्तुत करूंगी जो एमएफपी के कई दावों को न केवल झुठलाते हैं, बल्कि इसके विकल्प "डॉमिनैंट करंसी पैराडाइम" (डीसीपी) का समर्थन करते हैं। आखिर में मैं पिछले पैराग्राफ में उठाए गए सवालों के साथ घरेलू और अंतरराष्ट्रीय नीति पर डीसीपी के निहितार्थों पर बात करूंगी। और निष्कर्ष रूप में इतना ही कहूंगी कि यूरो और हाल के दौर में उभरने वाला चीनी युआन, डॉलर के प्रभुत्व को चुनौती देने का माद्दा रखते हैं।

मंडेल–फ्लेमिंग पैराडाइम और इसकी प्रयोज्यता के लिए 1999 में रॉबर्ट मंडेल को अर्थशास्त्र के नोबेल पुरस्कार से नवाजा गया था। अगर आपने इसके बारे में कभी न भी सुना हो, तो भी मेरा मानना है कि इसके निहितार्थों को आपने आत्मसात कर लिया है। उदाहरणार्थ, यदि आपसे पूछा जाए कि कमजोर मुद्रा के क्या प्रभाव होंगे, यानी ऐसी स्थिति जब मुद्रा का मूल्य घट जाए और अपने बाकी के व्यापार भागीदारों के मुकाबले उसकी कीमत कम हो जाए तो संभवतः आपका जवाब यही होगा कि ऐसी स्थिति में देश का निर्यात बढ़ेगा, आयात कम होगा, और मुद्रास्फीति बढ़ेगी। यदि यह गिरावट भारतीय रुपए या अमेरिकी डॉलर या जापानी येन में हो तो मुझे संदेह है कि आपका जवाब बदलेगा। एमएफपी का केंद्रीय पूर्वानुमान यही है।

हालांकि, इस पूर्वानुमान का आधार एक महत्त्वपूर्ण धारणा है। वह यह कि प्रत्येक देश के निर्यातक अपने देश की मुद्रा में निर्यात मूल्य निर्धारित करते हैं। और यह

मूल्य विनिमय दर में उतार–चढ़ाव की तुलना में काफी कम बदलता है। इसे प्रायः 'उत्पादक मुद्रा मूल्य निर्धारण' के रूप में जाना जाता है, क्योंकि उत्पादक की अपनी मुद्रा में कीमतें अपेक्षाकृत अधिक स्थिर होती हैं। और अधिक ठोस रूप में कहूंतो इस धारणा के अनुसार, भारतीय निर्यातक रुपए में निर्यात मूल्य तय करते हैं और इन कीमतों में विनिमय दर जितना उतार–चढ़ाव नहीं होता। इसका मतलब यह हुआ कि जब रुपए में अपने व्यापारिक साझेदार देशों की मुद्राओं के मुकाबले गिरावट आती है तो भारतीय उत्पादों को खरीदने वाले अमेरिकी आयातकों को लगभग उतने ही बराबर अनुपात में कम डॉलर खर्च करने पड़ते हैं, जितनी कि विनिमय दर घटती है। इसी प्रकार, भारतीय उत्पादों के चीनी आयातकों को युआन में बचत होती है। ऐसी सूरत में भारत से माल आयात करने वाले हर देश पर यही बात लागू होती है। वैश्विक बाजारों में भारतीय वस्तुओं की यह कम कीमत तब विश्व में भारतीय निर्यातों की मांग को बढ़ावा देगी और भारतीय निर्यात बिक्री मेंवृद्धि होगी।

आयातकों के दृष्टिकोण से इसे देखें तो यही बात कुछ इस तरह होगी: – भारत, चीन से माल आयात करता है, जिसका मूल्य युआन में है और अमेरिका से भी वस्तुओं का आयात करता है, जिनका मूल्य डॉलर में है। और इस युआन और डॉलर की कीमतें विनिमय दरों की तुलना में कम बदलती हैं। इस मामले में यदि रुपया कमजोर है तो भारतीय बाजारों में अमेरिकी और चीनी वस्तुओं की कीमत को बढ़ना चाहिए और विदेशी वस्तुओं की मांग में गिरावट आनी चाहिए। इसका ही एक प्रभाव यह भी है कि कमजोर रुपया भारतीय अर्थव्यवस्था पर मुद्रास्फीति के दबाव को बढ़ाता है यानी रुपए में गिरावट से भारत में महंगाई बढ़ने का जोखिम रहता है। इसलिए कुल मिलाकर, व्यापारिक दृष्टिकोण से, वह देश जिसकी मुद्रा कमजोर पड़ती है, दुनिया के बाजारों में एक प्रतिस्पर्धी बढ़त हासिल करता है और दुनिया के बाकी हिस्सों के साथ अपने व्यापार संतुलन में सुधार लाता है।

स्पर्धात्मक लाभ के लिए ये ठीक वैसे ही तर्क हैं, जैसे अमेरिका ने चीन पर अपनी मुद्रा में हेरफेर करने और अनुचित व्यापार पद्धतियां अपनाने का आरोप लगाया था। यही दलील व्यापारिक कॉन्ट्रैक्ट में 'मुद्रा में हेरफेर' (करंसी मैनिपुलेशन) संबंधी उपधाराओं को शामिल करने की मांग उठाती है, ताकि विभिन्न देशों को व्यापार में अनुचित लाभ उठाने के लिए अपनी मुद्राओं को कृत्रिम रूप से कमजोर बनाए रखने से रोका जा सके। यह अकेले अमेरिका की ही बात नहीं है, बल्कि विकासशील देश भी अपने प्रतियोगी देशों द्वारा मुद्राओं को कमजोर रखने की शिकायत करते हैं। ब्राजील के वित्त मंत्री गिडो मंटेगा ने 2010 में अमेरिका पर अपनी मौद्रिक नीति को असाधारण रूप से नरम रखते हुए 'मुद्रा युद्ध' में लिप्त होने का आरोप लगाया था, जिसे आज भी याद किया जाता है। इसलिए, चाहे आप किसी उन्नत अर्थव्यवस्था के नीति निर्माता हों या किसी उभरते बाजार वाली अर्थव्यवस्था के, दुनिया के नीति निर्माता मुद्रा के इस उतार-चढ़ाव के प्रभाव को समान रूप से देखते हैं।

नीतियों और अकादमिक चर्चाओं में एमएफपी की अहमियत को देखते हुए यह जरूरी है कि इस पैराडाइम की मान्यताओं को तथ्यों की कसौटी पर रखा जाए। एमएफपी की पहली केंद्रीय मान्यता यही है कि निर्यातक अपनी मुद्रा में कीमतें तय करते हैं। जैसा कि मैंने बताया है, यह तथ्य वास्तविकता से दूर है। इससे अधिक सटीक व्याख्या यह है कि निर्यातक भारी मात्रा में डॉलर में इन्वॉइस करते हैं। 2015 में जैक्सन हॉल सिंपोजियम में अपने शोधपत्र में मैंने 43 देशों के व्यापार चालान के आंकड़ों और इन्वॉइसिंग का विश्लेषण सामने रखा था। ये देश, दुनिया के 55% आयात, और 57% निर्यात का प्रतिनिधित्व करते हैं। एमएफपी के विपरीत मैं ये दर्ज करती हूं कि इन्वॉइसिंग मुद्रा के रूप में डॉलर का हिस्सा दुनिया के निर्यात का 3.1 गुना है। इसका मतलब यह हुआ कि कई गैर-अमेरिकी निर्यातक भी अपने निर्यात की इन्वॉइसिंग डॉलर में करते हैं।

इसका एक अर्थ यह भी होता है कि ज्यादातर विश्व आयात भी डॉलर में इन्वॉइस किए जाते हैं। एक आकलन के अनुसार, इन्वॉइसिंग मुद्रा के रूप में डॉलर का हिस्सा वैश्विक आयात का 4.7 गुना होने का अनुमान है। डॉलर की भूमिका कितनी महत्वपूर्ण है, इस बात पर प्रकाश डालने के लिए व्यापार की एक और अन्य प्रमुख वैश्विक मुद्रा यूरो के साथ इसकी तुलना करना उपयोगी होगा। इन्वॉइसिंग मुद्रा के रूप में यूरो की हिस्सेदारी वैश्विक निर्यात की 1.2 गुना है। दूसरे शब्दों में कहें तो, कुछ गैर-यूरो देश अपने निर्यातों को यूरो में इन्वॉइस करते हैं, परंतु यह डॉलर के इस्तेमाल से काफी कम है।

चार्ट 1 में विभिन्न देशों के आयातों का डॉलर में किया गया इन्वॉइस (काली पट्टी) और उसके ठीक आगे अमेरिका द्वारा आयात के हिस्से (ग्रे पट्टी) को दिखाया गया है। एमएफपी के अनुसार इन दोनों पट्टियों की समान ऊंचाई होनी चाहिए थी। इसके विपरीत, इन्वॉइसिंग में डॉलर का हिस्सा, अमेरिकी आयातों को काफी पीछे छोड़ता है। भारतीय आयातों की बात करें तो 86% आयात डॉलर में इन्वॉइस किए जाते हैं, जबकि अमेरिका से आयात सिर्फ 5% ही है। इसी तरह, भारतीय निर्यातों का 86% हिस्सा डॉलर में इन्वॉइस होता है, जबकि सिर्फ 15% निर्यात ही अमेरिका को होता है। भारतीय आयातों में चीन का हिस्सा 16% है, जो मुख्य रूप से डॉलर में इन्वॉइस होता है।

दूसरे शब्दों में कहें तो, अधिकांश देश निर्यात के लिए अपनी स्वयं की मुद्रा का उपयोग नहीं करते हैं। तालिका 1 में प्रत्येक देश की उनकी अपनी मुद्रा में निर्यात और आयात की इन्वॉइसिंग की हिस्सेदारी दिखाई गई है। मुद्राओं का एक विशाल हिस्सा विदेशी मुद्रा इन्वॉइसिंग पर निर्भर रहता है। यूरो देश के नाम को तारांकित किया गया है, जो 'गैर यूरो' देशों के साथ उनके व्यापार को दर्शाता है।

दिलचस्प बात यह है कि जापान और ब्रिटेन, जिनकी मुद्राएं आरक्षित मुद्राएं (रिजर्व करेंसी) हैं, वहां भी निर्यात का क्रमश: 40% और 51%हिस्सा ही उनकी अपनी मुद्रा में इन्वॉइस होता है। वास्तविक अपवाद यहां अमेरिका ही है, जिसका 93%आयात और 97% निर्यात अपनी मुद्रा में इन्वॉइस होता है। मैं इस बात पर जोर दूँगी कि इतनी भारी मात्रा में डॉलर इन्वॉइसिंग तेल या तांबे जैसी कमॉडिटी की कीमतों में ही नहीं है, बल्कि वस्तुओं के एक बड़े समूह पर लागू होती है। वस्तुत: एमएफपी उन्हीं वस्तुओं पर लागू होता है, जिनकी कीमतें विनिमय दर की तुलना में स्थिर होती हैं। फलस्वरूप एमएफपी कमॉडिटी कीमतों पर लागू नहीं होता है।

प्रत्यक्षत: तथ्य यह है कि वास्तविकता में व्यापार की इन्वॉइसिंग इतनी भारी मात्रा में डॉलर में होती है कि यह तथ्य एमएफपी के आधार को ही चुनौती देता है और एक वैकल्पिक पैराडाइम की आवश्यकता महसूस होती है। कैमिला कासाज, फेडरिको डायज और पियरे–ओलिविअर गौरिंशास के साथ मेरे पेपर में हम इसे "डॉमिनेन्ट करंसी पैराडाइम (डीसीपी) कहते हैं, जो इसी विचार को प्रकाश में लाता है कि बहुसंख्य व्यापार डॉलर में इन्वॉइस किए जा रहे हैं, जो डॉलर को 'प्रभुत्व वाली मुद्रा' (डॉमिनेन्ट करंसी) बनाते हैं। डीसीपी के अनुसार विश्व निर्यात का एक बड़ा अंश डॉलर में इन्वॉइस होता है और महत्त्वपूर्ण बात यह है कि डॉलर की कीमतों पर 'निर्माता मुद्रा की कीमतों के विपरीत' विनिमय दर का बहुत अधिक असर नहीं पड़ता।

सिर्फ इसलिए कि निर्यातकों ने डॉलर में इन्वॉइस किया है, एमएफपी को झुठलाया नहीं जा सकता। ऐसा भी हो सकता है कि निर्यातक डॉलर में इन्वॉइस करते हों और इन डॉलर निर्यात मूल्यों में गंतव्य बाजार की मुद्रा के अनुसार उतार–चढ़ाव आता हो, जैसा कि एमएफपी में अनुमानित किया गया है। इसलिए

यह स्थापित करना आवश्यक है कि असल में ऐसा नहीं है। सह–लेखकों के साथ कई शोधपत्रों की श्रृंखला में हमने एमएफपी और डीसीपी की कई भविष्यवाणियों का परीक्षण किया है और यह पाया है कि डीसीपी वास्तविक स्थिति से काफी मेल खाता है। आगे मैं इस अनुसंधान के कुछ प्रमुख निष्कर्षों की चर्चा करूंगी।

1. एमएफपी के अनुसार, डॉलर में 10% की गिरावट से अमेरिका में आयात कीमतें करीब 10% तक बढ़ जाती हैं। वहीं, डीसीपी के मुताबिक, डॉलर में 10% की गिरावट से अमेरिका में आयात कीमतें करीब 0% बढ़ती हैं यानी न के बराबर असर पड़ता है।

   दोनों में यह अंतर इसलिए आता है, क्योंकि एमएफपी में कीमतें निर्यातक की मुद्रा में स्थिर हैं। जबकि डीसीपी में कीमतें डॉलर में स्थिर हैं। गोपीनाथ, इत्शोकी और रिगोबोन (2010) में हमने दिखाया है कि ये साक्ष्य डीसीपी के पक्ष में जाते हैं। हमने अमेरिकी आयातों को लिया, जिनकी बिलिंग डॉलर में हुई है। हमने देखा कि डॉलर में 10% की गिरावट से पहले महीने में आयात कीमतें लगभग 0%बढ़ीं। उसके बाद अगले दो साल में यह आंकड़ा बढ़कर 18% हो गया। यह चार्ट संख्या 2 में दिखाया गया है। यानी अमेरिकी आयातों की कीमतों पर विनिमय दर में उतार–चढ़ाव का 30%ही असर पड़ा।

   अब कोलंबिया जैसे देश का उदाहरण लेते हैं, जिसका पूरा व्यापार डॉलर में होता है यानी जिसके पूरे व्यापार पर डॉलर का प्रभुत्व है। डीसीपी के हिसाब से देखें तो विनिमय दर का आयात कीमतों पर उच्च प्रभाव अंतरण होता है। कासाज, डायज, गोपीनाथ और गौरिंशास (2016) के अपने शोध में हमने बताया है कि वाकई ऐसा होता है (चार्ट 3)। इसी प्रकार, रुपया कमजोर होगा तो अमेरिका की तुलना में भारत में अधिक महंगाई बढ़ेगी। इसे आसान शब्दों में कहें तो कहा जा सकता है कि विनिमय दर का शेष विश्व, विशेष रूप से विकासशील देशों की तुलना में अमेरिका में महंगाई पर तुलनात्मक रूप से

कम असर पड़ता है।

2. एमएफपी के अनुसार, मुद्रा में गिरावट के साथ निर्यातों की मात्रा बढ़ जानी चाहिए। लेकिन डीसीपी के अनुसार, गैर–अमेरिकी देशों, विशेष रूप से विकासशील देशों का निर्यात कमजोर रहेगा। वह इसलिए क्योंकि विनिमय दर गिरने से डॉलर में निर्यात मूल्यों पर इतना असर नहीं पड़ता और वे नहीं बदलते। परिणामस्वरूप, यदि किसी देश की मुद्रा अपने सभी व्यापार भागीदारों की मुद्रा की तुलना में बराबर गिरती है तो गंतव्य मुद्रा कीमत में कोई परिवर्तन नहीं आएगा और इसलिए मांग और निर्यात मात्रा में भी कोई परिवर्तन नहीं आएगा। इस संबंध में बाकायदा शोधों का दस्तावेजीकरण भी हुआ है, जिनमें बताया गया है कि उभरते बाजारों में बड़ी गिरावट आने के बावजूद निर्यात कमजोर रहा है, जो डीसीपी के अनुकूल है और एमएफपी के विपरीत। उपयोगी संदर्भों में एलेसेंड्रिया, प्रताप और यू (2013) और कासाज, डायज, गोपीनाथ और गौरिंशास (2016) शामिल हैं। पर्यटन एक ऐसा निर्यात क्षेत्र है, जो मुद्रा के अवमूल्यन से बढ़ता है, क्योंकि इसके दाम उत्पादक देश की मुद्रा में स्थिर रहते हैं, जो एमएफपी के अनुरूप है।

3. एमएफपी के अनुसार, द्विपक्षीय व्यापार मूल्य और व्यापार कितना होगा, यह द्विपक्षीय विनिमय दरों पर निर्भर करता है। वहीं, डीसीपी के अनुसार यह डॉलर की विनिमय दर पर निर्भर करता है। इसे ऐसे समझें – भारत, चीन से माल आयात करता है, लेकिन इस माल की कीमत यदि युआन के बजाय डॉलर में तय होती है तो भारत, चीन से कितना माल आयात करेगा और रुपये का मूल्य क्या होगा, यह रुपया–युआन की विनिमय दर के बजाय रुपया–डॉलर की विनिमय दर पर अधिक निर्भर करेगा। याद कीजिए जब इन्वॉइसिंग डॉलर में हुई तो कीमतें डॉलर के साथ चिपकी रहीं। भारत के

परिप्रेक्ष्य में इसका मतलब यह हुआ कि रुपए का मूल्य, रुपया–युआन विनिमय दर से न बदलकर रुपया–डॉलर विनिमय दर के साथ बदला।

बॉज, गोपीनाथ और प्लैगबॉर्ग मॉलर (2017) के अपने शोध पत्र में हमने आकलन किया और पाया कि आयात करने वाले देश की मुद्रा में डॉलर के मुकाबले 10% की गिरावट, उस देश की अपनी मुद्रा में माल की कीमतें 7.8% बढ़ा देती है। वह भी तब जब उस देश के व्यापारिक साझेदार के साथ द्विपक्षीय विनिमय दर में कोई बदलाव नहीं आता। वहीं दूसरी ओर, उस देश की मुद्रा में यदि उसके व्यापारिक साझेदार देश की मुद्रा के मुकाबले 10% की गिरावट आती है और विनिमय दर डॉलर के मुकाबले अपरिवर्तित रहती है तो आयात मूल्य केवल 1.6% बढ़ता है। इसी कारण यूएस डॉलर शेष विश्व के व्यापार और मुद्रास्फीति पर इतना प्रभाव डालता है।

डीसीपी के पक्ष में पुख्ता साक्ष्य को देखते हुए, यह सवाल करना गलत नहीं होगा कि व्यापार एक विशेष मुद्रा में ही क्यों किया जाता है। इसे इस तरह समझा जा सकता है: चूंकि ज्यादातर निर्यातक अपने माल के उत्पादन के लिए आयातित माल का इस्तेमाल करते हैं। इसलिए यदि उस माल की कीमत डॉलर में ही निर्धारित कर दी गई है तो यह स्वाभाविक है कि दुनिया के निर्यातकों के एक बड़े वर्ग की लागत डॉलर में तय हो रही है और उन्हें डॉलर में ही उसका भुगतान करना पड़ रहा है। दूसरा, यदि दुनिया में किसी निर्यातक फर्म के प्रतिद्वंद्वी डॉलर में कीमत निर्धारित करते हैं तो निर्यातक के लिए भी यही सुविधाजनक होगा कि वह भी डॉलर में ही भुगतान करे, ताकि वह अपने प्रतिद्वंद्वी की कीमतों के मुकाबले अतिरिक्त कीमतों में उतार–चढ़ाव

से बच सके और अपना मार्केट शेयर सुरक्षित रख सके।

तथ्यों में डीसीपी के लिए मजबूत समर्थन को देखते हुए अब मैं डीसीपी के मुख्य निहितार्थों पर चर्चा करूंगी:

1. मुद्रास्फीति स्थिरीकरण: विनिमय दर में उतार–चढ़ाव से किसी देश की मुद्रास्फीति कितनी प्रभावित होती है कि इसका अनुभवसिद्ध नियम यह है कि उस देश के आयातों का कितना भाग विदेशी मुद्रा में इन्वॉइस किया गया है। किसी देश के आयात का जितना बड़ा भाग विदेशी मुद्रा में इन्वॉइस होगा, उसकी मुद्रास्फीति छोटी (1 तिमाही) एवं लंबी (2वर्ष) दोनों अवधियों में विनिमय दर से उतनी ज्यादा संवेदनशील होगी। अमेरिका जैसे देश के लिए, जिसके 93% आयात डॉलर में इन्वॉइस होते हैं, वे भारत जैसे देशों की तुलना में प्रभावरहित हैं, जिसके 97% आयात विदेशी मुद्रा (मुख्यत: डॉलर) में इन्वॉइस होते हैं।

2. निर्यात स्पर्धात्मकता: जब किसी देश की मुद्रा में गिरावट आती है तो ऐसी उम्मीद लगाई जाती है कि यह देश के उत्पादों की मांग को बढ़ावा देगी, क्योंकि इससे वैश्विक बाजारों में माल की सापेक्ष कीमत में कमी आती है। जो देश निर्यात के लिए विदेशी मुद्रा में इन्वॉइस करते हैं उनके लिए ऐसी संभावना मुश्किल है। इसका यह मतलब नहीं है कि गैर–प्रमुख मुद्रा वाले देश कमजोर विनिमय दर से लाभ नहीं उठाते। उन्हें लाभ होता है, लेकिन यह मुख्य रूप से मार्कअप और मुनाफे में बढ़ोतरी के माध्यम से होता है, और निर्यात की मात्रा में बहुत ज्यादा बदलाव नहीं होता है। लंबी अवधि के दौरान उच्च मुनाफे का लाभ बेशक बड़ा होता है और उत्पादन और निर्यात क्षमता को

बढ़ाता है। इसलिए मुद्रा–युद्धों का तर्क तो बना हुआ है लेकिन एमएफपी के विपरीत, डीसीपी के अंतर्गत यह अलग प्रकार से काम करता है।

3. मौद्रिक नीति के प्रभाव विस्तार: मौद्रिक नीति के प्रभाव विस्तार में काफी असमानताएं हैं। अमेरिका में मौद्रिक नीति को नियंत्रित करना डॉलर की मूल्यवृद्धि से जुड़ा हुआ है, इससे वे देश अपनी मौद्रिक नीति को नियंत्रित करने को मजबूर होते हैं जो अपने आयात डॉलर में इन्वॉइस करते हैं। दूसरी तरफ बाकी दुनिया में मौद्रिक नीति नियंत्रण का अमेरिका पर काफी कम असर पड़ता है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि अमेरिकी आयात डॉलर में इन्वॉइस होते हैं और डॉलर का प्रभुत्व होने के कारण अमेरिकी केंद्रीय बैंक से प्रतिक्रिया की कम आवश्यकता होती है। इसके अलावा, विश्व व्यापार कीमतें और मात्रा डॉलर में उतार–चढ़ाव से तय होती हैं और यह प्रभाव विश्व–व्यापार में इसके हिस्से से कहीं अधिक है। द्विपक्षीय व्यापार प्रवाह का अनुमान लगाने के लिए द्विपक्षीय विनिमय दरों से ज्यादा डॉलर की महत्ता है, बावजूद इसके कि अमेरिका उस व्यापार ट्रांजेक्शन में कोई पक्षकार नहीं है।

4. विनिमय दर नीति: मिल्टन फ्रीडमन ने लचीली विनिमय दरों की वकालत इसलिए की, क्योंकि वे दुनिया को एमएफपी के चश्मे से देख रहे थे। डीसीपी के तहत लचीली विनिमय दरों का लाभ काफी सीमित है और तेजी से उतरती–चढ़ती विनिमय दरों के डॉलर में संसाधन जुटाने वाली कंपनियों की बैलेंस शीट पर नकारात्मक असर जैसे दुष्प्रभावों को देखते हुए विकासशील देशों के लिए 'प्रबंधित फ्लोट' का तर्क एक स्वतंत्र फ्लोट वाली विनिमय दर से बेहतर है।

5. <u>अंतरराष्ट्रीय वित्त का डॉलरीकरण</u>: डॉलर का प्रभुत्व सिर्फ व्यापार ही नहीं, बल्कि अंतरराष्ट्रीय वित्त में भी है। यह चार्ट 4 में दर्शाया गया है। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर संसाधन जुटाने वाली गैर–अमेरिकी कंपनियां यूरो जैसी किसी अन्य मुद्रा के बजाय डॉलर मुद्रा में अधिक ऋण लेती हैं। बैंक फॉर इंटरनेशनल सेटलमेंट के मुताबिक विदेशी मुद्रा में नामांकित स्थानीय दावों का 60% हिस्सा डॉलर में होता है।

जेरेमी स्टीन के साथ अपने शोधपत्र में हम तर्क देते हैं कि व्यापार और वित्त में डॉलर का प्रभुत्व स्वाभाविक रूप से जुड़ा हुआ है। व्यापार में इतनी ज्यादा मात्रा में डॉलर की इन्वॉइसिंग का प्रयोग, डॉलर आस्तियों की मांग को बढ़ावा देता है, जो बदले में डॉलर की ब्याज दर को कम कर देता है और इससे यह एक सस्ती फंडिंग मुद्रा बनी रहती है और डॉलर में उधारियों को प्रोत्साहन मिलता है। यह प्रभाव निर्यातकों को डॉलर में इन्वॉइस करने के लिए प्रोत्साहित करता है ताकि सस्ती डॉलर फंडिंग हासिल की जा सके, और यह पहले प्रभाव को ही और अधिक मजबूत बनाता है।

निष्कर्ष रूप में मैं कहूंगी कि अंतरराष्ट्रीय व्यापार को बेंचमार्क एमएफपी पैराडाइम के बनिस्बत डीसीपी के चश्मे से बेहतर तरीके से देखा जा सकता है। ऐसा करने से आंकड़ों की कई पहेलियां स्वतः हल हो जाती हैं और आप नए नीतिगत निष्कर्षों पर पहुंचते हैं। चूंकि उभरते बाजार अंतरराष्ट्रीय ट्रांजैक्शन के लिए डॉलर पर अधिक निर्भर रहते हैं और विश्व जीडीपी में इनका हिस्सा भी लगातार बढ़ रहा है इसलिए डॉलर की ब्याज दर और अमेरिका की मौद्रिक नीति का असर (स्पिलओवर) और अधिक बढ़ जाता है। डीसीपी फ्रेमवर्क प्रभुत्व वाली मुद्राओं के साथ किसी भी आर्थिक परिवेश

के लिए लागू होता है और प्रभुत्व वाली मुद्रा आवश्यक रूप से डॉलर ही हो, यह बिल्कुल जरूरी नहीं। अमेरिका का अपनी मुद्रा का प्रभाव खोना नाटकीय लग सकता है। लेकिन सवाल यह है कि ऐसा कब होगा। मुद्रा के प्रभुत्व की इस दौड़ में डॉलर को टक्कर देने वाली दो ही मुद्राएं हैं, यूरो और हाल में उभरा चीनी युआन। हालांकि यूरो करीब 20 वर्षों से अस्तित्व में है। इसके बावजूद डॉलर के प्रभुत्व पर इसका बहुत कम असर हुआ है। लेकिन भविष्य में यह बदल भी सकता है। हाल ही में चीनी सरकार ने विशेष रूप से अफ्रीकी देशों को युआन विनिमय दर में ऋण उपलब्ध कराकर और व्यापार के लिए युआन में इन्वॉइसिंग बढ़ाते हुए युआन के अंतरराष्ट्रीयकरण के प्रयास किए हैं। तथापि, अंतरराष्ट्रीय व्यापार और वित्त दोनों में डॉलर के अत्यधिक प्रयोग को देखते हुए, डॉलर की जगह किसी दूसरी मुद्रा को सीमित करना काफी मुश्किल काम है, जिसमें लंबा समय लग सकता है।

******

संदर्भ:

1. Alessandria, G., Pratap, S., and Yue, V. Z. (2013). Export dynamics in large devaluations. International Finance Discussion Papers 1087, Board of Governors of the Federal Reserve System.

2. Boz, E., Gopinath, G., and Plagborg-Møller, M. (2017). Global trade and the dollar. Working Paper.

3. Burstein, A. and Gopinath, G. (2014). International Prices and Exchange Rates. In Gopinath, G., Helpman, E., and Rogoff , K., editors, Handbook of International Economics, volume 4, chapter 7, pages 391–451. Elsevier.

4. Casas, C., D 'ıez, F. J., Gopinath, G., and Gourinchas, P.O. (2017). Dominant currency paradigm: A new model for small open economies. Working Paper.

5. ECB (2017). The International Role of the Euro. Technical report, European Central Bank.

6. Gopinath, G. (2015). The international price system. In Jackson Hole Symposium, volume 27. Federal Reserve Bank at Kansas City.

7. Gopinath, G. and Itskhoki, O. (2010). Frequency of price adjustment and pass-through. Quarterly Journal of Economics, 125(2):675–727.

8. Gopinath, G. and Itskhoki, O. (2010). In search of real rigidities. In Acemoglu, D. and Woodford, M., editors, NBER Macroeconomics Annual, volume 25. University of Chicago Press.

9. Gopinath, G., Itskhoki, O., and Rigobon, R. (2010). Currency Choice and Exchange Rate Pass-Through. American Economic Review, 100(1): 304–36.

10. Gopinath, G. and Rigobon, R. (2008). Sticky borders. Quarterly Journal of Economics, 123(2): 531–575.

******

तालिका 1: अमेरिका के अलावा, विभिन्न देशों का अपनी मुद्रा में सीमित प्रयोग

देश	आयात	निर्यात	देश	आयात	निर्यात
अमेरिका	0.93	0.97	कनाडा	0.20	0.23
इटली	0.58	0.61	पोलैंड	0.06	0.04
जर्मनी	0.55	0.62	आयरलैंड	0.06	0.05
स्पेन	0.54	0.58	थाईलैंड	0.04	0.07
फ्रांस	0.45	0.50	इजरायल	0.03	0.00
युनायटेड किंगडम	0.32	0.51	तुर्की	0.03	0.02
ऑस्ट्रेलिया	0.31	0.20	दक्षिण कोरिया	0.02	0.01
स्विट्जरलैंड	0.31	0.35	ब्राजील	0.01	0.01
नॉर्वे	0.30	0.03	इंडोनेशिया	0.01	0.00
स्वीडन	0.24	0.39	भारत	0.00	0.00
जपान	0.23	0.39			

Source: Gopinath (2015)

चार्ट1: व्यापार में डॉलर का प्रभुत्व: तथ्य और प्रभाव: देशवार

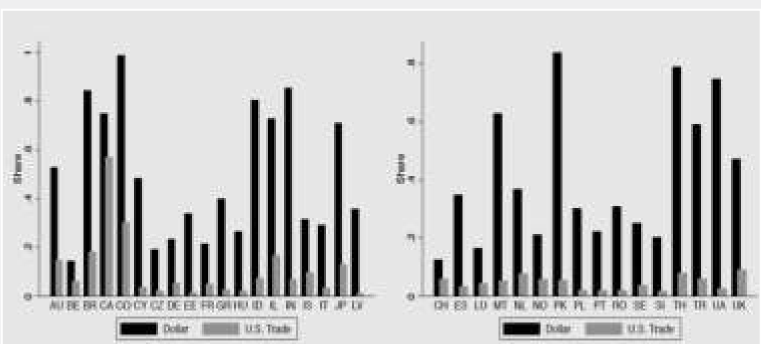

Source: Gopinath (2015)

चार्ट 2: अमेरिका में मासिक अंतराल से, आयात मूल्य पर विनिमय दर का असर

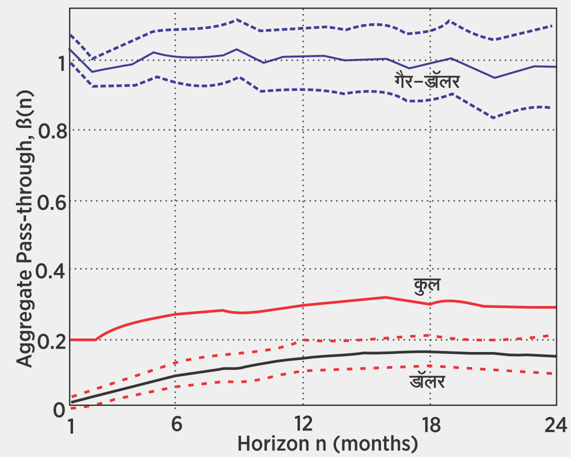

Source: Gopinath, Itskhoki and Rigobon, 2010

चार्ट3: कोलंबिया में तिमाही अंतराल से, आयात मूल्य पर विनिमय दर का असर

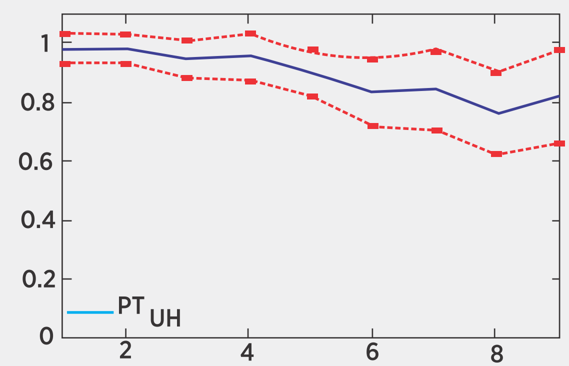

Source: Casas, Diez, Gopinath and Gourinchas, 2016

चार्ट 4: अंतरराष्ट्रीय वित्त में डॉलर का प्रभुत्व

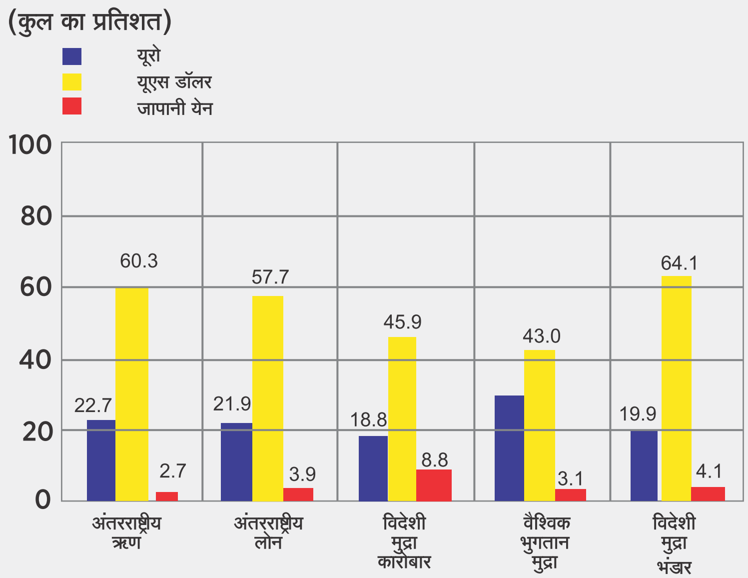

Sources: BIS, IMF, SWIFT, CLS and ECB calculations.
Notes: A comparison of selected international currencies, Data as at end-2015 or latest available.

चार्ट 5: विश्व जीडीपी में उभरती हुई अर्थव्यवस्थाओं का बढ़ता हिस्सा

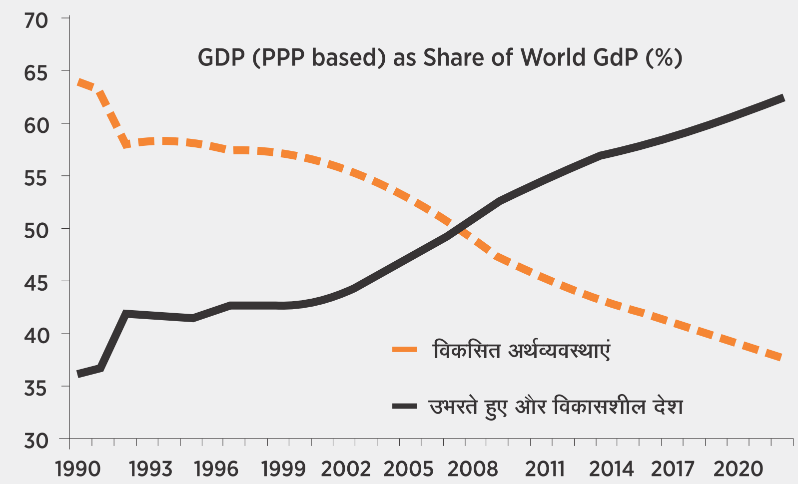

प्रो. गीता गोपीनाथ

जॉन ज़्वान्स्ट्रा प्रोफेसर, इंटरनेशनल स्टडीज
एंड इकनॉमिक्स, हार्वर्ड विश्वविद्यालय

गीता गोपीनाथ हार्वर्ड हार्वर्ड विश्वविद्यालय में इंटरनेशनल स्टडीज और इकनॉमिक्स की जॉन ज़्वान्स्ट्रा प्रोफेसर हैं। उनका शोध अंतरराष्ट्रीय वित्त और वृहद् अर्थशास्त्र पर केंद्रित है। वह नेशनल ब्यूरो ऑफ इकनॉमिक रिसर्च में अंतरराष्ट्रीय वित्त और वृहद् अर्थशास्त्र कार्यक्रम की सह–निदेशक हैं। फेडरल रिज़र्व बैंक ऑफ बोस्टन में विजिटिंग स्कॉलर हैं, फेडरल रिज़र्व बैंक ऑफ न्यूयॉर्क के आर्थिक सलाहकारी पैनल की सदस्य हैं, केरल (भारत) के मुख्यमंत्री की आर्थिक सलाहकार हैं, अमेरिकन इकनॉमिक रिव्यू और हैंडबुक ऑफ इंटरनेशनल इकनॉमिक्स की सह–संपादक हैं और रिव्यू ऑफ इकनॉमिक स्टडीज की प्रबंध संपादक रही हैं। वह वित्त मंत्रालय, भारत सरकार के जी–20 मामलों पर प्रमुख सलाहकारी समूह की सदस्य भी रह चुकी हैं। 2011 में उन्हें विश्व आर्थिक फोरम द्वारा वर्ष यंग ग्लोबल लीडर के रूप में भी चुना जा चुका है। अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष (आईएमएफ) द्वारा वर्ष 2014 में जारी 45 वर्ष से कम आयु वाले शीर्ष 25 अर्थशास्त्रियों में भी उनका नाम शामिल था। हार्वर्ड विश्वविद्यालय में आने से पहले वह यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो के ग्रैजुएट स्कूल ऑफ बिजनेस में अर्थशास्त्र की सहायक प्रोफेसर थीं।